

औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी (काज़ी-उल-कुज़्ज़ात) की संस्था : न्यायिक प्रशासन, धार्मिक वैधता एवं राज्यसत्ता का ऐतिहासिक विश्लेषण

संजू कुमारी एवं मुक्ता सिंह

इतिहास विभाग मध्यांचल प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, रातीबड़, भोपाल — 462044, मध्य प्रदेश, भारत

सार (Abstract)

मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना में न्याय व्यवस्था राज्य के प्रमुख आधारों में से एक थी। इस व्यवस्था का संचालन केवल प्रशासनिक नियमों तक सीमित नहीं था, बल्कि उसका गहरा संबंध इस्लामी विधि, धार्मिक सिद्धांतों तथा सम्राट की राजनीतिक सत्ता से भी था। विशेषतः सम्राट औरंगज़ेब के शासनकाल (1658–1707) में न्यायिक संस्थाओं का पुनर्गठन तथा इस्लामी विधि के औपचारिक अनुप्रयोग पर विशेष बल दिया गया। इसी संदर्भ में शाही काज़ी (काज़ी-उल-कुज़्ज़ात) का पद मुगल न्यायिक प्रशासन का सर्वोच्च न्यायिक पद बनकर उभरता है। यह अधिकारी केवल न्यायिक निर्णय देने तक सीमित नहीं था, बल्कि सम्राट को विधिक एवं धार्मिक परामर्श प्रदान करना, शरीअत की व्याख्या करना, न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति में सहयोग देना तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों में न्यायिक व्यवस्था के संचालन को दिशा देना भी उसकी जिम्मेदारी का भाग था। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से काज़ी को इस्लामी न्यायशास्त्र का सर्वोच्च प्रतिनिधि माना जाता था, किन्तु व्यवहारिक स्तर पर उसकी शक्ति सम्राट की सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता के अधीन थी।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी संस्था की ऐतिहासिक भूमिका, उसके अधिकारों, नियुक्ति-प्रक्रिया, न्यायिक कार्यों तथा राज्य एवं धर्म के मध्य उसके मध्यस्थ स्वरूप का आलोचनात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि औरंगज़ेब ने शरीअत को प्रशासनिक वैधता प्रदान करने के लिए काज़ियों को विशेष महत्व अवश्य दिया, किन्तु राज्यहित, सैन्य आवश्यकता तथा साम्राज्य की प्रशासनिक अनिवार्यताओं के समक्ष अनेक अवसरों पर उन्होंने काज़ियों की विधिक राय को अस्वीकार भी किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुगल शासन पूर्णतः धर्मतांत्रिक व्यवस्था नहीं था, बल्कि धार्मिक वैधता और राजनीतिक व्यवहारिकता के मध्य संतुलन स्थापित करने वाला एक व्यावहारिक साम्राज्य था।

यह अध्ययन प्राथमिक फ़ारसी स्रोतों, समकालीन इतिहासग्रंथों तथा आधुनिक इतिहासकारों के विश्लेषण के आधार पर यह स्थापित करता है कि शाही काज़ी की संस्था औरंगज़ेब की धार्मिक नीति को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है, किन्तु इसे केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि प्रशासनिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी देखना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द: औरंगज़ेब, मुगल न्याय व्यवस्था, शाही काज़ी, काज़ी-उल-कुज़्ज़ात, शरीअत, इस्लामी विधि, न्यायिक प्रशासन, मुगल साम्राज्य।

भूमिका

मध्यकालीन भारत के इतिहास में मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था अपनी संगठित संरचना, केंद्रीकृत नियंत्रण तथा विधिक संस्थाओं के कारण विशेष महत्व रखती है। इस साम्राज्य की सफलता केवल उसकी सैन्य शक्ति अथवा आर्थिक संसाधनों पर आधारित नहीं थी, बल्कि ऐसी प्रशासनिक संस्थाओं पर भी निर्भर थी जिन्होंने विशाल एवं विविधतापूर्ण साम्राज्य को एक राजनीतिक इकाई के रूप में बनाए रखा। न्याय व्यवस्था इस प्रशासनिक संरचना का सबसे महत्वपूर्ण अंग थी, क्योंकि किसी भी साम्राज्य की वैधता का आधार केवल विजय नहीं बल्कि न्यायपूर्ण शासन भी माना जाता था। मुगल सम्राट स्वयं को न्याय का अंतिम स्रोत मानते थे, परन्तु न्याय के संचालन के लिए उन्होंने विभिन्न

न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति की, जिनमें शाही काज़ी का पद सर्वोच्च था। शाही काज़ी सम्राट और न्यायपालिका के मध्य वह महत्वपूर्ण कड़ी था जो धार्मिक विधि और शाही प्रशासन के बीच समन्वय स्थापित करता था।

मुगल शासन में न्यायिक व्यवस्था का विकास पूर्ववर्ती इस्लामी परम्पराओं से प्रभावित था। दिल्ली सल्तनत के समय से ही काज़ी की संस्था भारतीय प्रशासनिक ढाँचे का अभिन्न अंग बन चुकी थी, किन्तु मुगल काल में विशेष रूप से औरंगज़ेब के शासन में इसे अधिक संस्थागत स्वरूप प्राप्त हुआ। इसका प्रमुख कारण यह था कि औरंगज़ेब स्वयं इस्लामी विधि का गहन अध्ययन था तथा उसने शासन की वैधता को शरीअत के सिद्धांतों से जोड़ने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उसके शासनकाल में *फ़तावा-ए आलमगीरी* जैसे विधिक ग्रंथ का संकलन कराया गया, जिसने न्यायिक निर्णयों के लिए एक मानक आधार प्रदान किया। परन्तु इस तथ्य का अर्थ यह नहीं है कि समस्त प्रशासन केवल धार्मिक नियमों के अनुसार संचालित होता था। वास्तव में औरंगज़ेब के शासन में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ राज्यहित को धार्मिक मत से अधिक प्राथमिकता दी गई। इस प्रकार शाही काज़ी की भूमिका को समझने के लिए केवल धार्मिक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं है; इसके प्रशासनिक एवं राजनीतिक पक्षों का अध्ययन भी समान रूप से आवश्यक है।

शाही काज़ी की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी और सामान्यतः यह नियुक्ति सद्र-उस-सुदूर अथवा सद्र-ए-कुल की अनुशंसा पर आधारित होती थी। नियुक्ति के लिए विद्वत्ता, धार्मिक ज्ञान, इस्लामी न्यायशास्त्र में प्रवीणता, नैतिक आचरण तथा निष्पक्षता को आवश्यक योग्यता माना जाता था। व्यवहार में हालांकि इन आदर्शों का पूर्णतः पालन नहीं हुआ। कुछ अवसरों पर पारिवारिक प्रभाव, व्यक्तिगत निकटता अथवा राजनीतिक कारण भी नियुक्तियों को प्रभावित करते दिखाई देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आदर्श और व्यवहार के बीच एक उल्लेखनीय अंतर विद्यमान था। यही विरोधाभास मुगल न्यायिक व्यवस्था की वास्तविक प्रकृति को समझने का आधार प्रदान करता है।

औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी केवल न्यायाधीश नहीं था। वह सम्राट का विधिक सलाहकार, धार्मिक मामलों का व्याख्याकार, राजपरिवार के वैवाहिक एवं उत्तराधिकार संबंधी मामलों का अधिकारी तथा अनेक अवसरों पर प्रशासनिक निर्णयों का सहभागी भी था। युद्धबंदियों के साथ व्यवहार, धार्मिक विवाद, करों की वैधता, उत्तराधिकार, विवाह, वसीयत तथा दीवानी एवं फौजदारी मामलों में उसकी राय प्राप्त की जाती थी। तथापि सम्राट उसकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। यदि राज्यहित, वित्तीय आवश्यकता या साम्राज्य की सुरक्षा किसी अन्य निर्णय की अपेक्षा करती थी, तो औरंगज़ेब बिना संकोच काज़ी की राय को अस्वीकार कर देता था। इससे यह सिद्ध होता है कि मुगल सम्राट की संप्रभुता न्यायपालिका से ऊपर थी और काज़ी की शक्ति धार्मिक प्रतिष्ठा के बावजूद सीमित थी।

इतिहासलेखन में औरंगज़ेब की न्यायिक नीति को लेकर लंबे समय से मतभेद रहे हैं। कुछ इतिहासकारों ने उसे कट्टर धार्मिक शासक के रूप में चित्रित किया है, जिसने न्यायिक व्यवस्था को इस्लामीकरण का साधन बनाया। दूसरी ओर आधुनिक इतिहासकारों का एक वर्ग यह तर्क देता है कि औरंगज़ेब मूलतः एक व्यावहारिक शासक था, जिसने धार्मिक संस्थाओं का उपयोग राज्य की वैधता को सुदृढ़ करने के लिए किया, परन्तु प्रशासनिक निर्णय सदैव साम्राज्य के हितों को ध्यान में रखकर लिए। उपलब्ध स्रोतों का विश्लेषण इस दूसरे दृष्टिकोण को अधिक पुष्ट करता है। उदाहरणस्वरूप, दक्कन अभियानों, गोलकुंडा एवं बीजापुर के विरुद्ध सैन्य कार्रवाई तथा कर-व्यवस्था से जुड़े अनेक मामलों में शाही काज़ियों की राय को स्वीकार नहीं किया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि अंतिम निर्णय सम्राट का ही होता था।

यह भी उल्लेखनीय है कि शाही काज़ी की संस्था पूर्णतः निष्कलंक नहीं थी। समकालीन स्रोत अनेक काज़ियों पर भ्रष्टाचार, पदों की बिक्री, पक्षपातपूर्ण निर्णय तथा धन संचय के आरोप लगाते हैं, जबकि कुछ अन्य काज़ियों—जैसे शेख-उल-इस्लाम—को उनकी निष्पक्षता, सादगी और नैतिक दृढ़ता के लिए अत्यंत सम्मान दिया गया है। इस प्रकार शाही काज़ियों का चरित्र एकरूप नहीं था; वह व्यक्ति विशेष की योग्यता, नैतिकता तथा राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित था। यही कारण है कि इस संस्था का मूल्यांकन किसी एक आयाम से नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत अध्ययन का मूल उद्देश्य औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी की संस्था का समग्र विश्लेषण करना है। इसमें नियुक्ति-प्रक्रिया, अधिकार, न्यायिक कार्य, प्रशासनिक दायित्व, धार्मिक वैधता, सम्राट के साथ संबंध तथा व्यावहारिक सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण किया जाएगा। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि मुगल न्यायिक प्रशासन में शरीअत और राज्यसत्ता के बीच किस प्रकार का संतुलन विकसित हुआ तथा शाही काज़ी उस संतुलन का प्रमुख संवाहक कैसे बना।

शाही काज़ी की नियुक्ति, न्यायिक अधिकार एवं सम्राट औरंगज़ेब के साथ संबंध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मुगल साम्राज्य की न्यायिक व्यवस्था का मूल आधार सम्राट की सर्वोच्च संप्रभुता थी, किन्तु इस संप्रभुता को विधिक और धार्मिक वैधता प्रदान करने का दायित्व शाही काज़ी (काज़ी-उल-कुज़ात) जैसे उच्च न्यायिक अधिकारी पर निहित था। औरंगज़ेब के शासनकाल में यह पद केवल औपचारिक धार्मिक अधिकारी का नहीं था, बल्कि साम्राज्य की न्यायिक संरचना का केंद्रीय स्तंभ था। शाही काज़ी को इस्लामी विधि का सर्वोच्च ज्ञाता माना जाता था और उसकी प्रतिष्ठा समस्त साम्राज्य के काज़ियों में सर्वोच्च थी। तथापि उसकी वास्तविक शक्ति सम्राट की इच्छा एवं राज्य की प्रशासनिक आवश्यकताओं से नियंत्रित होती थी। यही कारण है कि औरंगज़ेब के काल में शाही काज़ी की संस्था एक ओर धार्मिक अधिकार का प्रतीक थी तो दूसरी ओर शाही सत्ता के अधीन कार्य करने वाली प्रशासनिक संस्था भी थी।

शाही काज़ी की नियुक्ति पूर्णतः सम्राट के अधिकार क्षेत्र में आती थी। यद्यपि नियुक्ति के समय सद्र अथवा प्रमुख धार्मिक अधिकारियों से परामर्श लिया जाता था, फिर भी अंतिम निर्णय सम्राट का होता था। यह व्यवस्था इस बात का प्रमाण है कि न्यायपालिका की सर्वोच्च संस्था भी सम्राट की संप्रभु सत्ता से स्वतंत्र नहीं थी। नियुक्ति के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाता था जो इस्लामी न्यायशास्त्र (फ़िक्ह), हदीस, कुरआन तथा हनफ़ी विधि का गहन ज्ञाता हो। इसके अतिरिक्त सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता, धार्मिक आचरण, विनम्रता तथा नैतिक चरित्र को भी आवश्यक योग्यताओं में सम्मिलित किया गया था। समकालीन विधि-ग्रंथों में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि न्यायाधीश का निर्णय तभी वैध माना जाएगा जब वह व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त होकर केवल विधि एवं न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हो।

औरंगज़ेब स्वयं धार्मिक शिक्षा प्राप्त शासक था। इसलिए वह शाही काज़ी की नियुक्ति को अत्यंत गंभीर विषय मानता था। उपलब्ध फ़ारसी स्रोतों से ज्ञात होता है कि नियुक्ति के समय उम्मीदवार के ज्ञान, चरित्र, धार्मिक प्रतिष्ठा तथा सार्वजनिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती थी। कई अवसरों पर सम्राट ने स्वयं यह कहा कि काज़ी का पद अत्यंत पवित्र है और इसे ग्रहण करना ईश्वर की सेवा के समान है। इस प्रकार नियुक्ति केवल प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि उसे धार्मिक उत्तरदायित्व के रूप में भी देखा जाता था। यही कारण है कि नियुक्ति के समय विद्वानों तथा उलेमा की प्रतिष्ठा को भी महत्व दिया जाता था।

यद्यपि आदर्श व्यवस्था अत्यंत उच्च नैतिक मानकों पर आधारित थी, तथापि व्यावहारिक परिस्थितियाँ इससे भिन्न थीं। कुछ अवसरों पर प्रभावशाली परिवारों, प्रतिष्ठित उलेमा अथवा दरबार के निकटस्थ व्यक्तियों को भी यह पद प्राप्त हुआ। समकालीन इतिहासकारों ने संकेत किया है कि कुछ शाही काज़ियों ने अपने पद का उपयोग निजी संपत्ति अर्जित करने तथा प्रभाव बढ़ाने के लिए भी किया। दूसरी ओर शेख-उल-इस्लाम जैसे कुछ काज़ियों को उनकी ईमानदारी, धार्मिक निष्ठा तथा निष्पक्ष निर्णयों के कारण अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। इससे स्पष्ट होता है कि संस्था की प्रतिष्ठा उसके पद से अधिक उस पर आसीन व्यक्ति के चरित्र पर निर्भर करती थी। यही कारण है कि औरंगज़ेब समय-समय पर काज़ियों के कार्यों की समीक्षा भी करता था और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें हटाने या उनके अधिकार सीमित करने से भी नहीं हिचकिचाता था।

शाही काज़ी की न्यायिक शक्तियाँ अत्यंत व्यापक थीं। वह दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई कर सकता था। हत्या, उत्तराधिकार, विवाह-विच्छेद, संपत्ति-विवाद, वसीयत, धार्मिक अपराध, धर्मत्याग तथा सार्वजनिक नैतिकता से संबंधित मामलों में उसकी राय अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती थी। राजधानी में वह स्वयं न्यायालय संचालित करता था, जबकि प्रांतीय काज़ियों के निर्णयों के विरुद्ध अपील भी उसके समक्ष प्रस्तुत की जा सकती थी। यद्यपि अपील की व्यवस्था विद्यमान थी, तथापि मुगल न्यायिक प्रणाली में प्रत्येक स्तर के काज़ी को मूल न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। इसलिए अनेक मामलों में पुनः स्वतंत्र सुनवाई की जाती थी, न कि केवल पूर्व निर्णय की समीक्षा। यह व्यवस्था आधुनिक न्यायिक अपील प्रणाली से भिन्न थी और मुगल न्यायशास्त्र की विशिष्ट विशेषता को प्रदर्शित करती है।

औरंगज़ेब प्रत्येक सप्ताह न्यायसभा आयोजित करता था, जिसमें शाही काज़ी, मुफ्ती, उलेमा, दारोगा-ए-अदालत तथा अन्य अधिकारी उपस्थित रहते थे। इस न्यायसभा में सम्राट स्वयं वादियों की बातें सुनता था और आवश्यकतानुसार शाही काज़ी से शरीअत के अनुसार विधिक परामर्श प्राप्त करता था। यदि किसी मामले में इस्लामी विधि स्पष्ट होती, तो निर्णय उसी के अनुसार दिया जाता; किन्तु जहाँ राज्यहित अथवा प्रशासनिक आवश्यकताएँ प्रमुख होतीं, वहाँ अंतिम

निर्णय सम्राट के विवेक पर निर्भर करता था। इस व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि औरंगज़ेब ने धार्मिक विधि को महत्व अवश्य दिया, किन्तु उसे राजनीतिक सत्ता से ऊपर स्थान नहीं दिया।

सम्राट और शाही काज़ी के संबंधों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि दोनों के बीच सम्मानजनक सहयोग था, परंतु अधिकारों की अंतिम सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित थी। शाही काज़ी विधिक परामर्श देता था, परन्तु वह सम्राट को बाध्य नहीं कर सकता था। अनेक अवसरों पर औरंगज़ेब ने काज़ी की राय स्वीकार की, विशेषकर जब प्रश्न व्यक्तिगत विधि, धार्मिक दायित्व अथवा नागरिक विवादों से संबंधित थे। किंतु राजस्व, सैनिक नीति, प्रांतीय प्रशासन तथा राजनीतिक सुरक्षा जैसे विषयों पर उसने स्वतंत्र निर्णय लिए। इससे यह सिद्ध होता है कि मुगल शासन में धार्मिक विधि और राजकीय नीति के मध्य व्यावहारिक संतुलन स्थापित किया गया था।

इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय उदाहरण अकाल-पीड़ित क्षेत्र के निवासियों के कर-भार से संबंधित है। शेख-उल-इस्लाम ने सम्राट से करों में राहत देने की अनुशंसा की और औरंगज़ेब ने उसे स्वीकार कर लिया। इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ काज़ी का सुझाव जनकल्याण तथा प्रशासनिक हित दोनों के अनुकूल था, वहाँ उसे सम्मानपूर्वक स्वीकार किया गया। इसके विपरीत कुछ धार्मिक विवादों में, विशेषकर काज़ी मीर के प्रकरण में, सम्राट ने विद्वानों की सामूहिक राय से असहमति व्यक्त की और अपनी राजनीतिक समझ के आधार पर कार्रवाई की। उस प्रसंग में शाही काज़ी ने सम्राट की इच्छा के अनुरूप मृत्युदंड देने से इंकार कर दिया, जिसके बाद सम्राट ने वैकल्पिक प्रशासनिक उपाय अपनाए। यह घटना स्पष्ट करती है कि शाही काज़ी पूर्णतः सम्राट का उपकरण नहीं था; वह विधिक सिद्धांतों के आधार पर असहमति भी व्यक्त कर सकता था। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि अंतिम शक्ति फिर भी सम्राट के हाथों में ही निहित थी।

इसी प्रकार सूफी परंपराओं, दरगाहों में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा तथाकथित 'बिदअत' (नवाचार) के प्रश्न पर भी शाही काज़ियों की भूमिका उल्लेखनीय थी। रूढ़िवादी उलेमा इन प्रथाओं को शरीअत के विपरीत मानते थे और उनके विरुद्ध कार्रवाई की अनुशंसा करते थे। मुहत्तसिबों की रिपोर्टों तथा शाही काज़ियों की राय के आधार पर कई बार निर्देश जारी किए गए कि दरगाहों में प्रचलित कुछ रीति-रिवाजों को समाप्त किया जाए। परंतु व्यवहार में इन निर्देशों का सीमित प्रभाव पड़ा क्योंकि स्थानीय समाज तथा सूफी परंपराएँ अत्यंत गहराई से स्थापित थीं। इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक आदेशों का क्रियान्वयन केवल विधिक शक्ति से संभव नहीं था; सामाजिक स्वीकृति भी उतनी ही आवश्यक थी।

शाही काज़ी की भूमिका केवल न्यायालय तक सीमित नहीं थी। वह राजपरिवार के विवाहों का पंजीकरण करता था, मेहर निर्धारित करवाता था, वसीयतों को प्रमाणित करता था, संपत्ति के हस्तांतरण पर अपनी मुहर लगाता था तथा राजकीय अंतिम संस्कारों में धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन भी करता था। इस प्रकार उसका पद न्यायपालिका और धार्मिक प्रशासन के मध्य सेतु के रूप में कार्य करता था। राजपरिवार के सामाजिक और धार्मिक जीवन में उसकी उपस्थिति उसकी उच्च प्रतिष्ठा का प्रमाण थी।

औरंगज़ेब के शासनकाल में एक अन्य महत्वपूर्ण संस्था **वकील-ए-शर** (वकील-ए-शरअ) की स्थापना भी हुई, जिसका उद्देश्य प्रजा के वैध दावों को राज्य के समक्ष प्रस्तुत करना था। यद्यपि यह अधिकारी शाही काज़ी के अधीन कार्य करता था और उसके पास स्वतंत्र न्यायालय नहीं था, फिर भी उसकी नियुक्ति इस तथ्य का संकेत देती है कि मुगल प्रशासन विधिक प्रक्रियाओं को अधिक व्यवस्थित बनाने का प्रयास कर रहा था। इससे न्यायिक प्रणाली का संस्थागत विस्तार हुआ और राज्य तथा प्रजा के बीच विधिक संवाद की एक नई व्यवस्था विकसित हुई।

समग्रतः देखा जाए तो औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी की संस्था ने धार्मिक वैधता, न्यायिक प्रशासन तथा शाही सत्ता के मध्य संतुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि उसका पद अत्यंत सम्मानित था, किन्तु उसकी स्वतंत्रता सीमित थी। वह शरीअत का सर्वोच्च व्याख्याकार अवश्य था, परन्तु राज्य का सर्वोच्च विधिनिर्माता नहीं। अंतिम निर्णय सम्राट के हाथों में निहित रहता था। यही विशेषता मुगल न्यायिक व्यवस्था को पूर्ण धर्मतांत्रिक शासन से अलग करती है और यह सिद्ध करती है कि औरंगज़ेब की न्यायिक नीति धार्मिक आदर्शों तथा प्रशासनिक यथार्थ के समन्वय पर आधारित थी।

न्यायिक कार्यप्रणाली, दीवानी एवं फौजदारी न्याय, अपीलीय व्यवस्था तथा औरंगज़ेब की न्यायिक नीति का आलोचनात्मक विश्लेषण

औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी की वास्तविक भूमिका केवल उसके पद अथवा धार्मिक प्रतिष्ठा से निर्धारित नहीं होती थी, बल्कि न्यायिक प्रक्रिया में उसकी सक्रिय भागीदारी से स्पष्ट होती थी। मुगल न्याय-व्यवस्था का स्वरूप आधुनिक अर्थों में स्वतंत्र न्यायपालिका जैसा नहीं था, क्योंकि सम्राट स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश माना जाता था। इसके बावजूद न्यायिक प्रक्रिया में विधिक सिद्धांतों, गवाहों, दस्तावेजों तथा शरीअत के प्रावधानों का पर्याप्त महत्व था। शाही काज़ी इस पूरी प्रक्रिया का प्रमुख विधिक अधिकारी था, जो सम्राट के निर्णयों को इस्लामी न्यायशास्त्र की दृष्टि से वैधता प्रदान करता था तथा आवश्यकतानुसार स्वतंत्र न्यायिक निर्णय भी देता था। यह व्यवस्था प्रशासनिक नियंत्रण और विधिक प्रक्रिया के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मुगल न्यायिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य केवल अपराधियों को दण्डित करना नहीं था, बल्कि सामाजिक संतुलन एवं सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना भी था। इस कारण न्यायिक प्रक्रिया में तथ्यों की जाँच, गवाहों की विश्वसनीयता तथा विवाद के सामाजिक प्रभावों का विशेष ध्यान रखा जाता था। जब कोई विवाद सम्राट के समक्ष प्रस्तुत होता था, तब प्रायः पहले उसकी प्रारम्भिक जाँच कराई जाती थी। कई मामलों में 'अमीन' नियुक्त किए जाते थे, जो घटनास्थल का निरीक्षण कर वास्तविक स्थिति की रिपोर्ट प्रस्तुत करते थे। इस प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि निर्णय केवल मौखिक कथनों पर आधारित नहीं होते थे, बल्कि प्रशासनिक जाँच भी न्यायिक निर्णय का महत्वपूर्ण आधार थी। सम्राट स्वयं रिपोर्टों का परीक्षण करता था और आवश्यकता पड़ने पर शाही काज़ी को विधिक निर्णय देने का निर्देश देता था।

शाही काज़ी के न्यायालय में आने वाले मामलों का दायरा अत्यंत व्यापक था। दीवानी विवादों में संपत्ति का उत्तराधिकार, भूमि स्वामित्व, ऋण, वसीयत, वैवाहिक अधिकार, मेहर, अनुबंध तथा व्यापारिक विवाद सम्मिलित थे। दूसरी ओर फौजदारी मामलों में हत्या, डकैती, व्यभिचार, धर्मत्याग, सार्वजनिक हिंसा तथा अन्य गंभीर अपराधों की सुनवाई की जाती थी। इन मामलों में काज़ी का दायित्व केवल दण्ड निर्धारित करना नहीं था, बल्कि यह सुनिश्चित करना भी था कि प्रस्तुत साक्ष्य इस्लामी विधि की कसौटी पर खरे उतरते हों। यदि पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध न हों तो कठोर दण्ड देने से बचा जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि न्यायिक प्रक्रिया विधिक औपचारिकताओं से संचालित थी और मनमाने निर्णयों को आदर्श व्यवस्था का अंग नहीं माना जाता था।

हत्या जैसे गंभीर अपराधों में औरंगज़ेब विशेष सावधानी बरतता था। उपलब्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि यदि किसी प्रांतीय अधिकारी अथवा सामंत ने पर्याप्त न्यायिक प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड दे दिया, तो सम्राट इसे अनुचित मानता था और ऐसे मामलों को शाही काज़ी के समक्ष पुनः प्रस्तुत करने का आदेश देता था। एक उल्लेखनीय उदाहरण फ़िरोज़ जंग ख़ाँ द्वारा एक अभियुक्त को बिना पर्याप्त प्रमाण के मृत्युदण्ड देने का है, जिसके पश्चात औरंगज़ेब ने स्पष्ट निर्देश दिया कि हत्या जैसे मामलों में शाही काज़ी द्वारा विधिवत सुनवाई के बिना अंतिम दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। यह उदाहरण दर्शाता है कि सम्राट स्वयं भी न्यायिक प्रक्रिया की वैधानिकता को महत्व देता था और विधि के शासन की प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहता था।

इसी प्रकार व्यभिचार तथा नैतिक अपराधों से जुड़े मामलों में भी शाही काज़ी की भूमिका निर्णायक थी। जब किसी उच्च पदाधिकारी पर गंभीर नैतिक आरोप लगाए जाते थे, तब उसे तत्काल दण्डित करने के स्थान पर गिरफ्तार कर शाही काज़ी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था, जहाँ विधिसम्मत सुनवाई के बाद निर्णय दिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि औरंगज़ेब की न्यायिक व्यवस्था में उच्च पदस्थ अधिकारियों को भी न्यायिक प्रक्रिया से छूट प्राप्त नहीं थी। यद्यपि व्यवहार में प्रभावशाली व्यक्तियों को कुछ सुविधाएँ मिल जाती थीं, फिर भी सिद्धांततः सभी के लिए समान न्यायिक प्रक्रिया लागू थी।

दीवानी न्याय के क्षेत्र में उत्तराधिकार संबंधी विवाद अत्यंत महत्वपूर्ण थे। मुगल साम्राज्य में विशाल जागीरों, व्यापारिक संपत्तियों तथा व्यक्तिगत धन-संपत्ति के कारण उत्तराधिकार के प्रश्न प्रायः उत्पन्न होते रहते थे। ऐसे मामलों में शाही काज़ी शरीअत के उत्तराधिकार संबंधी सिद्धांतों के अनुसार निर्णय देता था। यदि किसी महिला, अनाथ अथवा विधवा का अधिकार प्रभावित होता था, तो उसके प्रतिनिधि (वकील) को न्यायालय में प्रस्तुत होकर पक्ष रखने की अनुमति दी जाती थी। यह व्यवस्था उस समय की न्यायिक प्रणाली में प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का परिचायक है और यह दर्शाती है

कि विधिक प्रक्रिया केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी, बल्कि महिलाओं के अधिकारों की रक्षा हेतु भी औपचारिक व्यवस्था उपलब्ध थी।

अपीलीय व्यवस्था मुगल न्याय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। यद्यपि प्रत्येक स्तर के काज़ी को स्वतंत्र रूप से मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार प्राप्त था, फिर भी उच्च स्तर पर पुनः सुनवाई की संभावना बनी रहती थी। यदि किसी पक्ष को प्रांतीय अथवा स्थानीय काज़ी के निर्णय से असंतोष होता, तो वह सम्राट अथवा शाही काज़ी के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता था। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अपील केवल पूर्व निर्णय की वैधानिक समीक्षा नहीं होती थी, बल्कि कई बार पूरे मामले की पुनः सुनवाई की जाती थी। इस दृष्टि से मुगल न्याय व्यवस्था आधुनिक न्यायिक प्रणाली से भिन्न थी, क्योंकि यहाँ उच्च न्यायालय स्वतंत्र परीक्षण कर सकता था।

समकालीन इतिहासकारों में कुछ ने यह मत व्यक्त किया है कि शाही काज़ी का प्रमुख कार्य अपीलों की सुनवाई था, किन्तु उपलब्ध स्रोत इस धारणा का पूर्ण समर्थन नहीं करते। वास्तव में शाही काज़ी न केवल अपीलों का निपटारा करता था, बल्कि अनेक मामलों में प्रथम न्यायालय के रूप में भी कार्य करता था। विशेषकर राजधानी तथा राजपरिवार से जुड़े मामलों में वह मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसका न्यायिक अधिकार बहुआयामी था और उसे केवल अपीलीय न्यायाधीश कहना उचित नहीं होगा।

औरंगज़ेब की न्यायिक नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि उसने न्यायिक प्रक्रिया में धार्मिक सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया, किन्तु राज्य की प्रशासनिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं की। अनेक अवसरों पर शाही काज़ी की राय के आधार पर निर्णय दिए गए, परन्तु जब प्रश्न साम्राज्य की स्थिरता, राजस्व अथवा सैन्य नीति का होता था, तब सम्राट अपने विवेक से निर्णय लेता था। यही कारण है कि आधुनिक इतिहासकार औरंगज़ेब को पूर्णतः धर्मतांत्रिक शासक मानने से सहमत नहीं हैं। उसकी न्यायिक नीति में धार्मिक वैधता और प्रशासनिक व्यवहारिकता दोनों का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। यह संतुलन ही मुगल प्रशासन की दीर्घकालिक स्थिरता का एक प्रमुख कारण था।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि व्यवहारिक स्तर पर न्यायिक व्यवस्था अनेक सीमाओं से मुक्त नहीं थी। विशाल साम्राज्य, संचार की सीमाएँ, प्रांतीय अधिकारियों का प्रभाव तथा स्थानीय सामाजिक संरचनाएँ न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित करती थीं। कई बार प्रांतीय स्तर पर शक्तिशाली अमीर, सूबेदार अथवा स्थानीय सामंत न्यायिक निर्णयों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालते थे। समकालीन स्रोतों में कुछ काज़ियों पर रिश्वत लेने, पक्षपातपूर्ण निर्णय देने तथा पद के दुरुपयोग के आरोप भी मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आदर्श न्यायिक व्यवस्था और वास्तविक प्रशासनिक व्यवहार के बीच पर्याप्त अंतर विद्यमान था। स्वयं औरंगज़ेब समय-समय पर ऐसे अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करता था, जिससे यह संकेत मिलता है कि वह इन समस्याओं से परिचित था और न्यायिक व्यवस्था की विश्वसनीयता बनाए रखना चाहता था।

न्यायिक प्रणाली की एक अन्य सीमा धार्मिक विधि की सीमित परिधि थी। मुगल साम्राज्य एक बहुधार्मिक और बहु-सांस्कृतिक राज्य था, जहाँ बड़ी संख्या में गैर-मुस्लिम प्रजा निवास करती थी। यद्यपि व्यक्तिगत विधि के मामलों में विभिन्न समुदायों की परंपराओं का सम्मान किया जाता था, फिर भी सर्वोच्च न्यायिक संरचना का आधार इस्लामी विधि ही थी। व्यवहार में स्थानीय रीति-रिवाजों, प्रथाओं तथा प्रादेशिक कानूनों को भी पर्याप्त महत्व दिया जाता था। अनेक अवसरों पर स्वयं औरंगज़ेब ने राज्यहित अथवा स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए काज़ियों की सलाह को स्वीकार नहीं किया। इससे स्पष्ट होता है कि मुगल प्रशासन व्यवहारिक शासन की आवश्यकता को धार्मिक सिद्धांतों से ऊपर रख सकता था। यही तथ्य औरंगज़ेब की प्रशासनिक नीति की जटिलता को रेखांकित करता है।

समग्र विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी की न्यायिक भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी, किन्तु वह पूर्णतः स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रतिनिधि नहीं था। उसकी शक्ति धार्मिक ज्ञान, विधिक अधिकार तथा सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित थी, जबकि उसकी प्रशासनिक सीमा सम्राट की संप्रभु सत्ता द्वारा निर्धारित होती थी। इस प्रकार मुगल न्यायिक व्यवस्था को न तो पूर्णतः धर्माधारित कहा जा सकता है और न ही पूर्णतः लौकिक; वह दोनों के मध्य एक व्यावहारिक संतुलन का उदाहरण थी। शाही काज़ी इस संतुलन का प्रमुख संवाहक था, जिसने न्याय, धर्म और शासन—तीनों को एक साझा प्रशासनिक ढाँचे में जोड़ने का प्रयास किया।

शाही काज़ी की प्रशासनिक एवं धार्मिक भूमिका : सत्ता, न्याय और वैधता का आलोचनात्मक मूल्यांकन

औरंगज़ेब के शासनकाल में शाही काज़ी (काज़ी-उल-कुज़्ज़ात) की संस्था को केवल न्यायिक दृष्टि से समझना पर्याप्त नहीं है। वास्तव में यह संस्था न्याय, धर्म तथा राज्यसत्ता के त्रिकोणीय संबंधों का प्रतिनिधित्व करती थी। यदि न्यायालय उसकी प्रत्यक्ष कार्यभूमि थी, तो प्रशासनिक एवं धार्मिक जीवन उसका व्यापक कार्यक्षेत्र था। यही कारण है कि औरंगज़ेब के शासन में शाही काज़ी की भूमिका न्यायिक निर्णय देने से कहीं अधिक विस्तृत दिखाई देती है। वह सम्राट का विधिक सलाहकार, इस्लामी कानून का सर्वोच्च व्याख्याकार, राजकीय धार्मिक अनुष्ठानों का पर्यवेक्षक तथा अनेक प्रशासनिक निर्णयों का सहभागी था। इस प्रकार उसका पद धार्मिक प्रतिष्ठा और राजकीय अधिकार के मध्य एक संस्थागत सेतु का कार्य करता था।

मुगल प्रशासन का मूल उद्देश्य केवल शासन करना नहीं था, बल्कि शासन को वैधता प्रदान करना भी था। मध्यकालीन इस्लामी राजनीतिक सिद्धांतों के अनुसार किसी भी मुस्लिम शासक की वैधता केवल उसकी सैन्य शक्ति से नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण शासन तथा शरीअत के संरक्षण से भी निर्धारित होती थी। औरंगज़ेब ने इस सिद्धांत को गंभीरता से ग्रहण किया और अपने शासन को धार्मिक रूप से वैध सिद्ध करने के लिए शाही काज़ियों तथा उलेमा को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया। किंतु यह महत्व पूर्ण स्वतंत्रता का पर्याय नहीं था। शाही काज़ी की धार्मिक प्रतिष्ठा जितनी अधिक थी, उसकी प्रशासनिक निर्भरता भी उतनी ही स्पष्ट थी। उसकी नियुक्ति, पदोन्नति, अधिकारों का विस्तार तथा पदच्युति—सभी पर अंतिम नियंत्रण सम्राट का ही था। इस प्रकार यह संस्था धार्मिक वैधता प्रदान करती थी, परंतु स्वयं राजनीतिक सत्ता का स्रोत नहीं थी।

शाही काज़ी की प्रशासनिक भूमिका का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि वह सम्राट को उन विषयों पर विधिक परामर्श देता था जिनका संबंध शरीअत की व्याख्या से होता था। भूमि-अनुदान, धार्मिक दान, सार्वजनिक नैतिकता, विवाह, उत्तराधिकार, वक्फ़, मस्जिदों तथा मदरसों के मामलों में उसकी राय प्राप्त की जाती थी। इसके अतिरिक्त वह अनेक अवसरों पर शाही फ़रमानों की विधिक वैधता का परीक्षण भी करता था। तथापि प्रशासनिक निर्णयों की अंतिम स्वीकृति सम्राट के हाथों में ही रहती थी। इससे स्पष्ट होता है कि शाही काज़ी शासन का नियंत्रक नहीं, बल्कि उसका विधिक सलाहकार था। यही कारण है कि औरंगज़ेब ने कई अवसरों पर उसकी राय का सम्मान किया, परंतु आवश्यक समझने पर उससे भिन्न निर्णय लेने में भी संकोच नहीं किया।

धार्मिक मामलों में शाही काज़ी की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी। वह केवल न्यायिक विवादों का समाधान नहीं करता था, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता था कि सार्वजनिक धार्मिक जीवन इस्लामी मान्यताओं के अनुरूप संचालित हो। विभिन्न प्रांतों से आने वाले धार्मिक विवाद, मतभेद अथवा किसी व्यक्ति पर लगाए गए अधार्मिक आचरण के आरोप उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर वह संबंधित अधिकारियों को जाँच का निर्देश देता था तथा सम्राट को उचित कार्रवाई की अनुशंसा करता था। इस प्रकार उसकी भूमिका न्यायाधीश से अधिक धार्मिक संरक्षक की भी थी।

इस संदर्भ में सूफ़ी परंपरा और रूढ़िवादी उलेमा के मध्य उत्पन्न तनाव विशेष उल्लेखनीय है। सत्रहवीं शताब्दी तक भारत के अनेक सूफ़ी केंद्र स्थानीय समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हो चुके थे। दरगाहों पर उर्स, चिराग़ जलाना, संगीत, मन्त्र, महिलाओं की भागीदारी तथा संत-पूजा जैसी अनेक प्रथाएँ व्यापक रूप से प्रचलित थीं। दूसरी ओर रूढ़िवादी उलेमा इन परंपराओं को शरीअत के विरुद्ध 'बिदअत' (नवाचार) मानते थे। ऐसी परिस्थितियों में शाही काज़ियों को अक्सर इन विवादों में मध्यस्थता करनी पड़ती थी। उपलब्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि मुहत्तसिबों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों तथा शाही काज़ियों की सलाह के आधार पर दरगाहों में प्रचलित कुछ प्रथाओं को समाप्त करने के निर्देश दिए गए। किंतु इन निर्देशों का सामाजिक प्रभाव सीमित रहा, क्योंकि सूफ़ी परंपराएँ स्थानीय समाज में अत्यंत गहराई से स्थापित थीं। इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक आदेशों की सफलता केवल राजकीय शक्ति पर निर्भर नहीं थी, बल्कि सामाजिक स्वीकृति भी उतनी ही आवश्यक थी।

यह स्थिति औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के वास्तविक स्वरूप को समझने में भी सहायक है। सामान्यतः यह माना जाता है कि उसने कठोर धार्मिक नीति अपनाई, परंतु उपलब्ध प्रमाण बताते हैं कि उसकी नीति का एक बड़ा उद्देश्य धार्मिक अनुशासन के माध्यम से प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करना था। शाही काज़ी इस नीति का उपकरण अवश्य था,

किन्तु नीति का निर्माता नहीं। उसकी भूमिका सलाह देने तक सीमित थी; अंतिम निर्णय सम्राट के राजनीतिक विवेक पर आधारित होता था। इसीलिए अनेक मामलों में काज़ियों की राय स्वीकार की गई, जबकि अनेक अवसरों पर उसे अस्वीकार भी कर दिया गया। यह तथ्य मुगल प्रशासन के व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट करता है।

शाही काज़ी की प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ केवल धार्मिक विषयों तक सीमित नहीं थीं। राजपरिवार के विवाहों का संपादन, मेहर का निर्धारण, विवाह-पंजीकरण, वसीयतों का प्रमाणीकरण, संपत्ति के हस्तांतरण पर मुहर लगाना तथा शाही परिवार के अंतिम संस्कारों में धार्मिक व्यवस्थाओं का संचालन भी उसके दायित्वों में सम्मिलित था। इन कार्यों से स्पष्ट होता है कि वह राजपरिवार के निजी जीवन का भी महत्वपूर्ण विधिक अधिकारी था। इससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक निकटता दोनों का अनुमान लगाया जा सकता है।

औरंगज़ेब के शासनकाल में **वकील-ए-शरअ** की नियुक्ति इस प्रशासनिक विकास का एक महत्वपूर्ण चरण थी। यह अधिकारी जनता के वैध दावों को राज्य के समक्ष प्रस्तुत करता था तथा न्यायिक प्रक्रिया में उनकी सहायता करता था। यद्यपि उसके पास स्वतंत्र न्यायिक अधिकार नहीं थे, फिर भी उसकी नियुक्ति यह दर्शाती है कि मुगल प्रशासन न्यायिक प्रक्रियाओं को अधिक संस्थागत और व्यवस्थित बनाने का प्रयास कर रहा था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि शाही काज़ी के कार्यभार में निरंतर वृद्धि हो रही थी और न्यायिक प्रशासन को अधिक संगठित स्वरूप देने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

इतिहासलेखन में शाही काज़ी की संस्था के संबंध में विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं। Jadunath Sarkar ने औरंगज़ेब की न्यायिक व्यवस्था को अत्यधिक धार्मिक प्रभाव वाला माना है तथा यह मत व्यक्त किया कि शाही काज़ी मुख्यतः अपीलिय न्यायालय के प्रधान अधिकारी के रूप में कार्य करता था। दूसरी ओर Irfan Habib तथा अन्य आधुनिक इतिहासकारों ने मुगल प्रशासन को अधिक व्यावहारिक दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार औरंगज़ेब की न्यायिक व्यवस्था का उद्देश्य केवल शरीअत का अनुपालन नहीं था, बल्कि साम्राज्य की राजनीतिक स्थिरता बनाए रखना भी था। इसलिए शाही काज़ी की भूमिका को केवल धार्मिक अधिकारी के रूप में देखना ऐतिहासिक दृष्टि से अधूरा होगा।

आधुनिक इतिहासलेखन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि मुगल राज्य को पूर्णतः धर्मतांत्रिक कहना उचित नहीं है। यदि ऐसा होता, तो शाही काज़ी की राय प्रत्येक स्थिति में अंतिम मानी जाती। किंतु उपलब्ध प्रमाण इसके विपरीत संकेत करते हैं। अनेक राजस्व संबंधी निर्णय, युद्धनीति, प्रांतीय प्रशासन तथा राजनयिक मामलों में औरंगज़ेब ने धार्मिक मत के स्थान पर राजनीतिक आवश्यकता को प्राथमिकता दी। इससे स्पष्ट होता है कि शरीअत शासन की वैधता का एक आधार अवश्य थी, परंतु राज्य की संपूर्ण नीति उसी पर आधारित नहीं थी। इस दृष्टि से शाही काज़ी की संस्था धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के मध्य संतुलन का माध्यम थी, न कि राजनीतिक सत्ता का विकल्प।

संस्था की सीमाएँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं थीं। शाही काज़ी की नियुक्ति सम्राट पर निर्भर थी; उसके निर्णयों का क्रियान्वयन प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किया जाता था; प्रांतीय स्तर पर उसके आदेशों की प्रभावशीलता स्थानीय अधिकारियों के सहयोग पर आधारित थी; तथा अनेक अवसरों पर शक्तिशाली अमीर न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते थे। समकालीन स्रोतों में कुछ काज़ियों पर रिश्तत लेने, पक्षपात करने तथा निजी संपत्ति अर्जित करने के आरोप भी मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्था आदर्श रूप में जितनी निष्पक्ष दिखाई देती है, व्यवहार में उतनी नहीं थी। औरंगज़ेब स्वयं समय-समय पर ऐसे अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करता था, जिससे यह सिद्ध होता है कि प्रशासन इन समस्याओं से परिचित था।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि मध्यकालीन भारत की परिस्थितियों में शाही काज़ी की संस्था न्यायिक उत्तरदायित्व, प्रशासनिक अनुशासन तथा धार्मिक वैधता का एक संगठित मॉडल प्रस्तुत करती थी। उसने न्यायिक प्रक्रियाओं को औपचारिक स्वरूप दिया, विधिक परामर्श की परंपरा को सुदृढ़ किया तथा सम्राट के निर्णयों को धार्मिक आधार प्रदान किया। उसकी सीमाओं के बावजूद यह संस्था मुगल प्रशासन की सबसे प्रभावशाली न्यायिक संस्थाओं में से एक थी और औरंगज़ेब के शासनकाल में इसका महत्व अपने चरम पर पहुँचा।

समग्र विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि शाही काज़ी न तो केवल न्यायाधीश था, न केवल धार्मिक अधिकारी और न ही मात्र शाही कर्मचारी। वह इन तीनों भूमिकाओं का समन्वित रूप था। उसकी शक्ति की वास्तविक सीमा सम्राट की राजनीतिक सर्वोच्चता द्वारा निर्धारित होती थी, जबकि उसकी प्रतिष्ठा इस्लामी विधि के ज्ञान और सामाजिक सम्मान पर आधारित थी। यही द्वैत—धार्मिक अधिकार और राजनीतिक अधीनता—औरंगज़ेब के न्यायिक प्रशासन की

सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी कारण शाही काज़ी की संस्था को समझे बिना मुगल न्याय-व्यवस्था, औरंगज़ेब की शासन-दृष्टि तथा मध्यकालीन भारतीय प्रशासनिक इतिहास का समुचित मूल्यांकन संभव नहीं है।

निष्कर्ष

मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि न्यायिक व्यवस्था केवल विधिक संस्थाओं का समूह नहीं थी, बल्कि वह शासन की वैधता, प्रशासनिक स्थिरता तथा सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख माध्यम भी थी। औरंगज़ेब के शासनकाल में यह व्यवस्था अपने सर्वाधिक संगठित स्वरूप में दिखाई देती है। शाही काज़ी (काज़ी-उल-कुज़्जात) की संस्था इस व्यवस्था का केंद्रीय आधार थी, जिसने न्यायिक प्रशासन को धार्मिक वैधता प्रदान करने के साथ-साथ सम्राट और विधि के मध्य समन्वय स्थापित किया। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि औरंगज़ेब ने न्यायिक संस्थाओं को सुदृढ़ करने का गंभीर प्रयास किया, परंतु उसने उन्हें कभी भी राज्यसत्ता से स्वतंत्र नहीं होने दिया। इस प्रकार उसकी न्यायिक नीति धार्मिक आदर्शवाद और राजनीतिक व्यवहारिकता के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास थी।

शोध के दौरान यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि शाही काज़ी की नियुक्ति अत्यंत सावधानी से की जाती थी तथा उसके लिए इस्लामी न्यायशास्त्र, कुरआन, हदीस और फ़िक्ह का गहन ज्ञान आवश्यक माना जाता था। साथ ही ईमानदारी, निष्पक्षता, धार्मिक आचरण तथा सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे गुणों को भी अनिवार्य माना गया। किंतु व्यवहारिक स्तर पर यह आदर्श हमेशा कायम नहीं रह सका। कई अवसरों पर राजनीतिक निकटता, पारिवारिक प्रभाव तथा दरबारी संबंध नियुक्तियों को प्रभावित करते दिखाई देते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुगल प्रशासन में योग्यता और राजनीतिक यथार्थ दोनों समानांतर रूप से कार्य कर रहे थे।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि शाही काज़ी की न्यायिक शक्तियाँ अत्यंत व्यापक थीं। वह दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई करता था, अपीलों का निपटारा करता था तथा आवश्यकतानुसार सम्राट को विधिक परामर्श प्रदान करता था। हत्या, उत्तराधिकार, विवाह, संपत्ति, धार्मिक विवाद तथा सार्वजनिक नैतिकता जैसे विषय उसके अधिकार क्षेत्र में आते थे। तथापि उसके निर्णय अंतिम नहीं होते थे। सम्राट औरंगज़ेब स्वयं सर्वोच्च न्यायिक एवं राजनीतिक प्राधिकारी था और आवश्यकता पड़ने पर वह शाही काज़ी की सलाह को स्वीकार अथवा अस्वीकार दोनों कर सकता था। यही तथ्य मुगल न्यायिक व्यवस्था की वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट करता है।

इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि औरंगज़ेब को केवल एक कट्टर धार्मिक शासक के रूप में प्रस्तुत करना ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतः उचित नहीं है। उपलब्ध स्रोत यह प्रमाणित करते हैं कि उसने शरीअत को प्रशासनिक वैधता का आधार अवश्य बनाया, किंतु अनेक अवसरों पर राज्यहित, वित्तीय आवश्यकताओं, प्रांतीय प्रशासन तथा सैन्य परिस्थितियों को धार्मिक मत से अधिक महत्व दिया। इस प्रकार उसकी शासन-पद्धति में धार्मिक सिद्धांत और राजनीतिक व्यवहारिकता दोनों समान रूप से विद्यमान थे। यही कारण है कि शाही काज़ी की संस्था धार्मिक अधिकार का प्रतीक होते हुए भी राजनीतिक सत्ता का विकल्प नहीं बन सकी।

प्रस्तुत अध्ययन यह भी दर्शाता है कि न्यायिक व्यवस्था के संचालन में स्थानीय परंपराओं, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा प्रशासनिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं की गई। अनेक मामलों में स्थानीय प्रथाओं को भी मान्यता दी गई, जिससे स्पष्ट होता है कि मुगल प्रशासन पूर्णतः शरीअत-आधारित कठोर व्यवस्था नहीं था। वास्तव में न्यायिक निर्णयों में इस्लामी विधि, स्थानीय प्रथाओं तथा सम्राट के प्रशासनिक विवेक का संयुक्त प्रभाव दिखाई देता है। यही कारण है कि मुगल न्याय-व्यवस्था को एक मिश्रित (Composite) विधिक व्यवस्था कहा जा सकता है।

शाही काज़ी की संस्था की सीमाएँ भी इस अध्ययन में स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से उसे सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी माना गया था, फिर भी व्यवहार में उसकी स्वतंत्रता सीमित थी। उसकी नियुक्ति, पदोन्नति तथा पदच्युति सम्राट पर निर्भर थी। न्यायिक निर्णयों का क्रियान्वयन प्रांतीय अधिकारियों द्वारा किया जाता था और कई बार शक्तिशाली अमीर तथा सूबेदार न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते थे। समकालीन स्रोतों में कुछ काज़ियों पर भ्रष्टाचार, रिश्वत तथा पक्षपात के आरोप भी मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आदर्श न्यायिक व्यवस्था और वास्तविक प्रशासनिक व्यवहार के मध्य पर्याप्त अंतर विद्यमान था।

इसके बावजूद शाही काज़ी की संस्था को मध्यकालीन भारतीय न्यायिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण संस्थाओं में स्थान दिया जाना चाहिए। इस संस्था ने न्यायिक प्रक्रियाओं को व्यवस्थित किया, विधिक निर्णयों को धार्मिक आधार प्रदान किया तथा सम्राट की न्यायप्रिय छवि के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजपरिवार के विवाह, वसीयत, संपत्ति के हस्तांतरण, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सार्वजनिक न्याय के संचालन में उसकी सक्रिय भागीदारी यह सिद्ध करती है कि वह केवल न्यायाधीश नहीं बल्कि राज्य के धार्मिक एवं प्रशासनिक जीवन का अभिन्न अंग था।

आधुनिक इतिहासलेखन के आलोक में यह निष्कर्ष भी महत्वपूर्ण है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में न्यायिक प्रशासन को समझने के लिए केवल धार्मिक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं है। इसके राजनीतिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक पक्षों का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध इसी दिशा में एक प्रयास है, जो यह स्थापित करता है कि शाही काज़ी की संस्था को केवल शरीअत के प्रवर्तक के रूप में नहीं, बल्कि मुगल शासन की प्रशासनिक संरचना के एक प्रभावशाली संवैधानिक अंग के रूप में समझा जाना चाहिए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में न्यायिक प्रशासन का वास्तविक स्वरूप धर्म और राजनीति के संतुलित समन्वय पर आधारित था। शाही काज़ी की संस्था इस समन्वय की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी थी, जिसने न्यायिक उत्तरदायित्व, धार्मिक वैधता तथा शाही संप्रभुता को एकीकृत करते हुए मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक स्थिरता को सुदृढ़ किया। इसलिए मध्यकालीन भारतीय प्रशासनिक इतिहास के अध्ययन में इस संस्था का महत्व अत्यंत विशिष्ट एवं स्थायी है।

संदर्भ (References)

(क) प्राथमिक स्रोत

1. *Maasir-i-Alamgiri*. Translated by Jadunath Sarkar. Calcutta.
2. *Fatawa-i-Alamgiri*. Arabic–Persian Edition.
3. *Muntakhab-ul-Lubab* by Khafi Khan.
4. *Mirat-i-Ahmadi*.
5. *Futuh-i-Alamgiri*.
6. *Ruqqat-i-Alamgiri*.
7. *Ahkam-i-Alamgiri*.
8. *Nigarnama-i-Munshi*.
9. *Nuskha-i-Dilkusha* by Bhimsen Saxena.
10. *Waqiat-i-Ajmer*.
11. *Maasir-ul-Umara* by Shahnawaz Khan.
12. *Hidaya*. Translated by Charles Hamilton.
13. *Mirat-ul-Alam*.
14. *Tarikh-i-Firozshahi* by Ziauddin Barani.
15. *Tabaqat-i-Nasiri* by Minhaj-i-Siraj.

(ख) द्वितीयक स्रोत

16. Jadunath Sarkar. *History of Aurangzib* (Vols. I–V).
17. Jadunath Sarkar. *Mughal Administration*.
18. Irfan Habib. *The Agrarian System of Mughal India*.
19. Satish Chandra. *Medieval India: From Sultanat to the Mughals*.
20. Harbans Mukhia. *The Mughals of India*.
21. S. A. A. Rizvi. *Muslim Revivalist Movements in Northern India*.
22. M. Athar Ali. *The Mughal Nobility under Aurangzeb*.
23. M. B. Ahmad. *Administration of Justice under the Mughals*.
24. Percival Spear. *The Oxford History of India*.
25. R. C. Majumdar. *The Mughal Empire*.
26. I. H. Qureshi. *The Administration of the Mughal Empire*.

27. A. B. M. Habibullah. *The Foundation of Muslim Rule in India*.
28. K. A. Nizami. *Religion and Politics in India during the Thirteenth Century*.
29. Mohammad Habib. *Politics and Society during the Medieval Period*.
30. R. P. Tripathi. *Rise and Fall of the Mughal Empire*.

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.